देवमाता देवी अनसूया

अमी बन्सल द्वारा पुनर्लिखित

भारत में, चित्रकूट के हरे-भरे वन में, फुहार उड़ाते झरनों और कलकल बहती मन्दाकिनी नदी के बीच, परम पूज्य ऋषि अत्रि और महायोगिनी अनसूया ने अपना आश्रम बनाया था। यह पृथ्वी पर स्थित स्वर्ग जैसा निवास-स्थान था। वहाँ प्रदान किए जा रहे ब्रह्मज्ञान के रहस्यों को सुनने के लिए आस-पास के वृक्षों की शाखाओं पर पक्षीगण तक एकत्र हो जाते थे। यह वन प्राचीन स्तोत्रों के स्पन्दनों और आदि नाद ॐ के अनुनाद से गुंजायमान रहता था।

अत्रि ऋषि, वैदिक परम्परा के सप्तर्षियों में से एक थे। ऋग्वेद के द्रष्टा, ऋषि अत्रि अत्यन्त मेधावी, दयालु और मानवता के उत्थान के प्रति समर्पित थे।

उनकी पत्नी, देवी अनसूया एक तपस्विनी थीं। वे एक तपोमय तथा स्वानुशासनयुक्त जीवन जीती थीं और वैदिक ज्ञान की साकार मूर्ति थीं—उनके विचारों, शब्दों एवं कृत्यों से, शास्त्रों की सिखावनियाँ सहज ही अभिव्यक्त होतीं। उनके चरित्र व आचरण में, उनके नाम का अर्थ प्रतिबिम्बित होता। ‘अनसूया’ का अर्थ है ‘किसी के भी प्रति असूया अर्थात् ईर्ष्या, कटुता या घृणा से रहित।’ उनकी संगति में होना ऐसा ही था जैसे किसी पवित्र एवं प्रशान्त झील के पास बैठना—उनके सान्निध्य में किसी व्यक्ति को केवल एक ही अनुभूति होती, अपनी आत्मा के स्पष्ट दर्शन।

ऋषि अत्रि और देवी अनसूया का आश्रम, सम्पूर्ण भारत में विख्यात था। उनके शिष्य ज़िम्मेदार, बुद्धिमान और दयालुता के गुणों से युक्त माने जाते थे जो अपने सम्पर्क में आने वाले हर व्यक्ति और हर चीज़ का सम्मान करते थे तथा इस चैतन्य नील ग्रह का निष्ठापूर्वक संरक्षण करते थे। किसान से लेकर ब्राह्मण तक, व्यापारी से लेकर सम्राट तक, सभी अपने बच्चों को चित्रकूट के आश्रम भेजना चाहते थे। इन आठ से दस वर्ष की आयु के बालकों की माताएँ जानती थीं कि देवी अनसूया से उनके बच्चों को अपनी माँ जैसा ही प्यार मिलेगा।

कई बार, अत्रि ऋषि मानवता के कल्याण हेतु अनेकानेक वर्षों तक गहन ध्यान में लीन रहा करते थे। अतः शिक्षण तथा आश्रम के अन्य कार्य अधिकांश रूप से देवी अनसूया के निर्देशानुसार किए जाते थे। यह उनकी उपस्थिति का ही प्रभाव था जिससे आश्रम का वातावरण आनन्द एवं शान्ति से ओतप्रोत

था। उनकी देखरेख व उनका प्रेम आश्रम के प्राण थे। वे सुनिश्चित करतीं कि विद्यार्थियों की उचित देखभाल हो रही है, आने वाले हर अतिथि के भोजन आदि का समुचित प्रबन्ध किया जा रहा है, साथ ही यह भी कि वृक्ष ठीक से फल-फूल रहे हैं और आश्रम के पशुओं पर भी ध्यान दिया जा रहा है। उनके पालन-पोषण द्वारा अत्रि ऋषि के छात्रों का भरपूर विकास हो रहा था—उनके शरीर स्वस्थ थे, उनके मन स्थिर व केन्द्रित रहते थे और परब्रह्म के ज्ञान की प्राप्ति के लिए उनकी ललक और भी तीव्र होती जा रही थी। उनके मातृवत् प्रेम की शक्ति से ये ब्रह्मचारी—ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने के पथ पर चलने वाले ये विद्यार्थी—अन्तर में उदित होने वाले, वेदों के सूक्ष्मतम ज्ञान के प्रति ग्रहणशील थे।

एक दिन जब महर्षि ब्रह्म के ध्यान में लीन थे, प्राणायाम द्वारा उनका मन हृदय में केन्द्रित था और वे पूर्ण विरक्ति की अवस्था में थे, उनके अन्तर में एक प्रार्थना का उदय हुआ : *वे जगन्नाथ, जिनकी मैं आराधना करता हूँ और जिनकी शरण में हूँ, मुझ पर प्रसन्न हों। वे परब्रह्म, मानव रूप में मेरी सन्तान बनकर मेरे जीवन को धन्य करें।*

आँखें खोलने पर उन्होंने अपनी पत्नी देवी अनसूया को देखा। वे महर्षि के लिए कुछ फल तथा जल लेकर अभी-अभी उनके कक्ष में आई थीं और उनकी ओर ही देख रही थीं। उनके चेहरे की मुस्कराहट बता रही थी कि वे ऋषि के मन की बात जानती हैं। महर्षि के मन में उठी प्रार्थना, उनकी भी गहन अभिलाषा थी—भगवान की माता बनने की कामना।

महर्षि जानते थे कि परब्रह्म उनकी सन्तान के रूप में अवतरित हों, इसके लिए उन्हें तपस्या करनी होगी। उन्होंने अपनी पत्नी से इस विषय में चर्चा की। देवी अनसूया ने कहा, "मैं आश्रम का ध्यान रखूँगी और आपकी तपस्या को सम्बल प्रदान करने हेतु प्रार्थना करूँगी।"

देवी अनसूया की सहमति से अत्रि ऋषि तपस्या करने के लिए विन्ध्याचल की ऊँची-नीची, हरी-भरी पहाड़ियों की ओर चल दिए। वहाँ, एक विशाल व शानदार वटवृक्ष की छाया में एक भव्य चट्टान पर, ऋषि पूर्वाभिमुख होकर परम चिति पर ध्यान करने लगे। उदित होते सूर्य व अस्त होते चन्द्रमा की साक्षी में, ऋषि, दिन-रात एक पाँव पर खड़े होकर, बिना कुछ खाए-पिए, केवल वायु का सेवन करते हुए ध्यानरत हो गए। महीने बीतते गऐ, फिर वर्ष बीतते गए। वर्षा होती रही, आँधी-तूफ़ान आए। ऋषि के चारों ओर झाड़ियाँ व लताएँ उग आईं। किन्तु, उन्हें कुछ भी विचलित न कर सका। उस क्षेत्र के प्राणी—गिलहरियाँ, हिरण और वैसे ही अन्य प्राणी—ॐ की ध्वनि से गुंजित उनके प्रत्येक श्वास व प्रश्वास को सुना करते।

कई दशक बीत गए। एक दिन ऋषि अत्रि की देह से एक तेजोमय प्रकाश फूटने लगा। वह प्रकाश स्वर्णिम-श्वेत वर्ण का व स्पन्दनमय था और निरन्तर विशाल व अधिक दीप्तिमान होते हुए, अपने मार्ग के हर पेड़-पौधे, हर प्राणी पर अपनी चमक बिखेरते हुए, क्षितिज की ओर बढ़ता जा रहा था। देवी अनसूया व ऋषि अत्रि की हृदय-गुहा में उदित हुई प्रार्थना, इस प्रकाश के माध्यम से मूर्तरूप लेती दिख रही थी। फिर भी, यह प्रार्थना, यह अभिलाषा वास्तव में थी किसकी?

अन्ततः, ऋषि अत्रि की देह से फूट रहा प्रकाश, उनके हृदय से प्रस्फुटित होकर स्वर्गलोक जा पहुँचा।

चारों वेद हाथों में धारण किए, कमल पर आसीन, ब्रह्मदेव ने ऊपर देखा क्योंकि उनके लोक में प्रवेश कर इस प्रकाश की किरणों ने उनके कमल की पंखुड़ियों को एक तेजोमय जगमगाहट से रंजित कर दिया था।

दूसरी ओर, क्षीरसागर में, चेतना के दुग्ध-सागर में, नागराज यानी अनन्त शेषनाग पर लेटे भगवान विष्णु ने देखा कि जल की सतह प्रकाश से जगमगा रही है। निकट से देखने के लिए भगवान विष्णु उठकर बैठ गए; जहाँ तक उनकी दृष्टि जा रही थी, ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो सम्पूर्ण सागर हीरों से आच्छादित हो गया हो!

उधर कैलाश पर्वत पर गहरी समाधि में लीन भगवान शिव ने अपने तीसरे नेत्र से देखा कि प्रकाश की किरणें, हिमालय के हिमाच्छादित शिखरों को पिघले स्वर्ण जैसा दर्शा रही हैं। किन्तु यह प्रकाश आ कहाँ से रहा था? भगवान समझ गए कि यह प्रकाश सूर्य से तो नहीं आ रहा है।

देवतागण, विस्मय से इस स्वर्णिम-श्वेत प्रकाश को देख रहे थे, कुछ था जो उनके हृदय में—निश्चित ही, वैश्विक हृदय में मन्थन कर रहा था। उनमें से हर एक, ब्रह्मतत्त्व का ही एक रूप था और अनासक्ति व विराग उनका सच्चा स्वरूप था। किन्तु इस प्रकाश की ओर खिंच जाने से *वे* भी स्वयं को रोक न पाए। यह अत्यन्त ही शुद्ध एवं प्रेमसिक्त था। यह किसी ऐसे स्रोत से आता प्रतीत हो रहा था जो स्वर्ग तथा वहाँ मिलने वाली किसी भी वस्तु से श्रेष्ठ है।

ब्रह्मदेव, भगवान विष्णु एवं भगवान शिव ने चेतना-जगत के आर-पार एक-दूसरे को देखा व मुस्कराए। इसी की तो उन्हें प्रतीक्षा थी, इच्छा थी, *आशा* थी।

वे सभी माताओं के सृजनकर्ता, पालक व उनकी शक्ति थे। युगों से, वे हर माँ की रक्षा करते रहे थे, उन्हें आशीर्वाद व वरदान देते रहे थे, उनकी निःस्वार्थ प्रार्थनाओं को पूरा करते रहे थे। किन्तु देवों ने स्वयं

कभी एक माँ के प्रेम का अनुभव नहीं किया था। उनमें से हरेक, मन ही मन, इस शुद्धतम, मधुरतम, असीम व निःस्वार्थ प्रेम को जानने व इसकी अनुभूति करने के लिए लालायित था, क्योंकि यद्यपि यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उनकी सृजनात्मकता व प्रेरणा से ही उत्पन्न हुआ, तथापि वे भी ऐसे प्रेम की गहराई की थाह नहीं पा सके थे।

अपार प्रसन्नता के साथ तीनों देव स्वर्ग में एकत्र हुए और पृथ्वी पर अवतरित होने के लिए तैयार हो गए। स्वयं उनकी अव्यक्त अभिलाषा, देवी अनसूया व ऋषि अत्रि की प्रार्थना बन गई थी।

विन्ध्याचल पर सूर्योदय हो रहा था; तब इस संसार के तीनों स्वामी, ऋषि अत्रि के सम्मुख प्रकट हुए।

वे बोले, "हे ऋषिश्रेष्ठ, कृपया अपने नेत्र खोलिए।" उनकी वाणी कोमलता से ऋषि के हृदय में और विन्ध्याचल पर्वत की घाटी में भी प्रतिध्वनित हो रही थी।

ऋषि की पलकें, किंचित् कँपकँपाकर खुल गईं। उनके चारों ओर की हर वस्तु प्रकाश में नहाई हुई थी। धीरे-धीरे वे देवों के देदीप्यमान स्वरूप को देख पाए। वहाँ खड़े थे ब्रह्मदेव, अपने विशुद्ध श्वेत वस्त्रों में, एक हाथ में जपमाला व दूसरे हाथ में कमण्डल लिए। उनके पवित्र कमण्डल में दैवीय जल था जिससे वे हर युग के आरम्भ में सम्पूर्ण सृष्टि का निर्माण करते हैं। वहाँ विद्यमान थे, नीलश्याम वर्ण वाले भगवान श्रीविष्णु, उनके गले में वैजयन्ती पुष्पों की माला थी और उनका सुदर्शन चक्र उदित हुए सूर्य के प्रकाश से चमचमा रहा था। और साथ ही खड़े थे, करुणाकर भगवान शिव, अपनी उलझी जटाओं सहित, एक हाथ में त्रिशूल लिए जिनके नेत्रों से करुणा बरस रही थी।

तीनों देवों के तेज के दर्शन करते ही ऋषि अत्रि को अनुभव हुआ मानो दशकों की उनकी शारीरिक थकान व जकड़न दूर हो गई हो। उन्होंने देवों के चरणों में साष्टांग प्रणाम किया।

"हम आपकी तपस्या व प्रार्थना से अत्यन्त प्रसन्न हैं," ब्रह्मदेव ने कहा। तीनों देव ऋषि को देखते हुए मुस्करा रहे थे।

ऋषि का हृदय इतना भावविभोर हो उठा था कि उनके मुख से आवाज़ ही नहीं निकल रही थी। अन्ततः, दोनों हाथ जोड़कर वे बोले, "आपके दर्शन प्राप्त करना, आपके भव्य स्वरूप को निहारना, मेरा असीम सद्भाग्य है। मैं सचमुच धन्य हो गया।"

"हम आपकी प्रार्थना को परिपूर्ण करने आए हैं," भगवान विष्णु ने कहा।

“आइए अब हम चलें और माता अनसूया के दर्शन करें,” भगवान शिव ने कहा।

अपने ऊपर तीनों देवों के चरणों का स्पर्श पाकर विन्ध्याचल पर्वत अपने आप को इतना सौभाग्यशाली अनुभव कर रहे थे कि उन्होंने चित्रकूट वन से आश्रम तक एक सुगम मार्ग प्रशस्त कर दिया। वन के वृक्षों ने फलने-फूलने का निश्चय किया, वायुदेव मन्द-मन्द बहने लगे और उन्होंने ऋषि अत्रि व तीनों देवों की यात्रा को वन्य पुष्पों की महक से सुगन्धमय बना दिया।

देवी अनसूया ने अपनी दिव्य अन्तर्दृष्टि से पहले ही जान लिया था कि तीनों देव, ऋषि अत्रि के साथ आश्रम की ओर पधार रहे हैं। उनकी आँखों में अश्रु उमड़ पड़े। उनकी प्रसन्नता की सीमा न थी। उन्होंने कोमल रेशम से बनी अपनी लाल-श्वेत प्रिय साड़ी पहनी और अपने विशिष्ट अतिथियों का स्वागत करने की तैयारियाँ करने लगीं।

आश्रम पहुँचने पर तीनों देवों का उन्होंने बड़े प्रेम से स्वागत किया। देवी अनसूया ने, उनके भाल पर कुमकुम व चन्दन का तिलक लगाया और उनकी आरती उतारी। उन्होंने अपने हाथों से बनाई मोगरे के ताज़े फूलों की मालाएँ उन्हें पहनाईं जिससे वे और भी अधिक मनोहर व तेजस्वी लगने लगे। देवी अनसूया की आँखें प्रेम, स्नेह व श्रद्धा से भरी हुई थीं।

देवी अनसूया द्वारा पूजा किए जाने के बाद, देवों ने परम्परानुसार पहले दाहिना चरण रखकर आश्रम के द्वार से अन्दर प्रवेश किया। देवी अनसूया ने हर एक को सुखदायी आसन प्रदान किए और उन्हें जल, ताज़े फल तथा दुग्ध-मिष्ठान्न अर्पित किए।

इतना स्नेहमय स्वागत पाकर तीनों देव द्रवित हो उठे। भगवान विष्णु अपनी मुस्कराहट को रोक न सके! वे उठे, उन्होंने देवी अनसूया का हाथ पकड़कर कहा कि वे उनके पास बैठें।

जब वे उनके पास बैठ गईं तब उन्होंने देवी अनसूया से कहा, “हमने आपकी प्रार्थना स्वीकार कर ली है। सत्य तो यह है कि जो आपकी प्रार्थना थी, वही हमारी भी सदा से इच्छा थी। हम हमेशा से ही आप जैसी माता के प्रेम का अनुभव करना चाहते थे।”

फिर भगवान शिव ने ऋषि अत्रि को सम्बोधित करते हुए कहा, “हम तीनों अपनी शक्तियों को मिलाकर, आने वाले समय में माता अनसूया के गर्भ से जन्म लेंगे। हम आपके व माता अनसूया के पुत्र के रूप में जो स्वरूप धारण करेंगे, वह सम्पूर्ण विश्व का उत्थान करने के लिए कार्य करेगा।”

और ऐसा ही हुआ। कई माह पश्चात्, दिसम्बर माह की पूर्णिमा को ऋषि अत्रि व देवी अनसूया के यहाँ तीन सिर वाले एक तेजस्वी बालक ने जन्म लिया; उसके तीन सिर, तीनों देवों के प्रतीक थे। उनका नाम रखा गया, 'दत्तात्रेय', अर्थात् 'प्रसाद स्वरूप देवों द्वारा प्रदत्त अत्रिपुत्र'।

देवी अनसूया व ऋषि अत्रि, दत्तात्रेय को अपने पुत्र के रूप में पाकर फूले न समाए। देवी अनसूया उनकी सभी आवश्यकताओं का ध्यान रखतीं। वे उन्हें नहलातीं-धुलातीं, वस्त्र पहनातीं और उन्हें ऋषियों व सन्तों की कहानियाँ सुनातीं। वे उनकी रुचि का स्वादिष्ट भोजन बनातीं—पूरी, खीर, पुरणपोली—और अपने हाथों से उन्हें खिलातीं। वे उन्हें सुलाने के लिए पावन स्तुतियाँ व नामधुनें सुनाती थीं और सवेरे नन्हें दत्तात्रेय के आँखें खोलने से पहले उनके पास ही होतीं।

जैसे-जैसे दत्तात्रेय बड़े होते गए, देवी अनसूया उन्हें संसार की रीति-नीति की बातें, शास्त्रों का मर्म तथा प्रकृति के रहस्यों के बारे में सिखाती गईं। यद्यपि भगवान दत्तात्रेय सर्वज्ञ थे, फिर भी वे अपनी माँ की बातें एकाग्रचित्त होकर सुनते थे। देवी अनुसूया का प्रेम, उनकी देखभाल, उनका धैर्य ऐसा था कि बालक रूप में देवगण यह भी भूल गए कि स्वर्ग कैसा लगता है।

सृजन, पालन व संहार की ब्रह्माण्डीय शक्तियों के अवतार, भगवान दत्तात्रेय आगे चलकर एक योगी, प्रथम अवधूत [वे जो भौतिक संसार से पूर्णतः विरक्त हैं] और परम गुरुतत्त्व के साकार रूप बने। युवा होने पर उन्होंने विश्व को आत्मसाक्षात्कार का मार्ग दिखलाने के लिए देवी अनसूया के आश्रम को त्याग दिया। गुरु दत्तात्रेय ने विश्व को 'अवधूतगीता' और अष्टांगयोग के प्रमुख तत्त्वों सहित अनेक उपदेश प्रदान किए।

एक चिरंजीवी के रूप में भगवान दत्ताात्रेय इस ग्रह पर आज भी विद्यमान हैं और मानवता के उत्थान के लिए अनन्तकाल से विभिन्न रूपों में प्रकट होते हैं। देवी अनसूया व ऋषि अत्रि की प्रार्थना के फलस्वरूप, अपनी माता के प्रेम की छाया में पालित-पोषित, भगवान दत्तात्रेय अपने नाम के अनुरूप ही थे व हैं। वे विश्व को प्रदत्त एक उपहार ही हैं।

यह कहानी, भागवतपुराण सहित कई ग्रन्थों में दिए गए वर्णन के अनुसार, भगवान दत्तात्रेय के जन्म की कथा से प्रेरित है।

© २०२१ एस. वाय. डी. ए. फ़ाउन्डेशन®। सर्वाधिकार सुरक्षित।